श्रीमद्भागवतम्

प्रथम स्कन्ध

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 3

धृतराष्ट्र द्वारा गृह-त्याग

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: श्री सूत गोस्वामी ने कहा : तीर्थयात्रा करते हुए विदुर ने महर्षि मैत्रेय से आत्मा की गति का ज्ञान प्राप्त किया और फिर वे हस्तिनापुर लौट आये। वे अपेक्षानुसार इस विषय में पारंगत हो गये।

श्लोक 2: विविध प्रश्न पूछने के बाद तथा भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमामयी सेवा में स्थिर हो चुकने पर, विदुर ने मैत्रेय मुनि से प्रश्न पूछना बन्द किया।

श्लोक 3-4: जब उन्होंने देखा कि विदुर राजमहल लौट आये हैं, तो—महाराज युधिष्ठिर, उनके छोटे भाई, धृतराष्ट्र, सात्यकि, संजय, कृपाचार्य, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी, कौरवों की अन्य पत्नियाँ तथा अपने-अपने बच्चों के साथ स्त्रियों समेत सारे निवासी—सभी अत्यन्त हर्षित होकर तेजी से उनकी ओर बढ़े। ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्होंने दीर्घकाल के बाद अपनी चेतना फिर से प्राप्त की हो।

श्लोक 5: वे सब परम प्रसन्नतापूर्वक उनके निकट गये,

मानो उनके शरीरों में फिर से प्राण का संचार हुआ हो। उन्होंने एक दूसरे को प्रणाम किया और गले मिलते हुए एक दूसरे का स्वागत किया।

श्लोक 6: चिन्ता तथा लम्बे वियोग के कारण, वे सब प्रेम-विवश होकर रूदन करने लगे। तब राजा युधिष्ठिर ने उनके बैठने के लिए आसन की व्यवस्था की और उनका सत्कार किया।

श्लोक 7: जब विदुर ठीक से भोजन कर चुके और पर्याप्त विश्राम कर लेने पर उन्हें सुखदायक आसन पर बिठाया गया। तब राजा ने उनसे

बोलना शुरू किया और वहाँ पर उपस्थित सारे लोग सुनने लगे।

श्लोक 8: महाराज युधिष्ठिर ने कहा : हे चाचा, क्या आपको याद है कि आपने किस तरह सदा हमारी माता तथा हम सबकी समस्त प्रकार की विपत्तियों से रक्षा की है? आपके पक्षपात ने, पक्षियों के पंखों के समान, हमें विष-पान तथा अग्निदाह से बचाया है।

श्लोक 9: पृथ्वी पर विचरण करते हुए, आपने अपनी जीविका कैसे चलाई? आपने किन-किन पवित्र स्थलों तथा तीर्थस्थानों पर सेवा की?

श्लोक 10: हे प्रभु, आप जैसे भक्त, निश्चय ही, साक्षात् पवित्र स्थान होते हैं। चूँकि आप भगवान् को अपने हृदय में धारण किए रहते हैं, अतएव आप समस्त स्थानों को तीर्थस्थानों में परिणत कर देते हैं।

श्लोक 11: हे चाचा, आप द्वारका भी गये होंगे? उस पवित्र स्थान में यदुवंशी हमारे मित्र तथा शुभचिन्तक हैं, जो नित्य ही भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में तत्पर रहते हैं। आप उनसे मिले होंगे अथवा उनके विषय में सुना होगा? वे अपने-अपने घरों में

सुखपूर्वक रह रहे हैं न?

श्लोक 12: महाराज युधिष्ठिर द्वारा इस तरह पूछे जाने पर महात्मा विदुर ने क्रमश: सब कुछ कह सुनाया, जिसका उन्होंने स्वयं अनुभव किया था। केवल यदुवंश के विनाश की बात उन्होंने नहीं कही।

श्लोक 13: दयावान महात्मा विदुर पाण्डवों को कभी भी दुखी नहीं देख सकते थे। अतएव उन्होंने इस अप्रिय तथा असह्य घटना को प्रकट नहीं होने दिया, क्योंकि आपदाएँ तो अपने आप आती हैं।

श्लोक 14: इस प्रकार अपने कुटुम्बियों द्वारा देवतुल्य सम्मानित होकर, महात्मा विदुर कुछ काल तक अपने बड़े भाई की मनोदशा को ठीक करने के लिए तथा इस प्रकार अन्य सबों को सुख देने के लिए वहाँ पर रहते रहे।

श्लोक 15: मण्डूक मुनि के द्वारा शापित होकर, जब तक विदुर शूद्र का शरीर धारण किये रहे, तब तक पाप कर्म करने वालों को दण्डित करने के लिए यमराज के पद पर अर्यमा कार्य करते रहे।

श्लोक 16: अपना राज्य वापस पाकर तथा एक ऐसे पौत्र का जन्म देखकर, जो उनके परिवार की प्रशस्त परम्परा को आगे चलाने में सक्षम था, महाराज युधिष्ठिर ने शान्तिपूर्वक शासन चलाया और उन छोटे भाइयों के सहयोग से, जो सारे के सारे कुशल प्रशासक थे, असामान्य ऐश्वर्य का भोग किया।

श्लोक 17: जो लोग घरेलू मामलों में अत्यधिक लिप्त रहते हैं और उन्हीं के विचारों में मग्न रहते जाते हैं, उन्हें दुस्तर सनातन काल अनजाने ही धर दबोचता है।

श्लोक 18: महात्मा विदुर यह सब जानते थे, अतएव उन्होंने धृतराष्ट्र को सम्बोधित करते हुए कहा : हे राजन्, कृपा करके यहाँ से शीघ्र ही बाहर निकल चलिये। विलम्ब न कीजिये। जरा देखें तो, भय ने किस प्रकार आपको वशीभूत कर रखा है।

श्लोक 19: इस भौतिक संसार में कोई भी व्यक्ति इस भयावह स्थिति का निराकरण नहीं कर सकता। हे स्वामी, शाश्वत काल के रूप में, पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् हम सबों के पास आ पहुँचे हैं।

श्लोक 20: जो भी सर्वोपरि काल (शाश्वत समय) के प्रभाव में है, उसे अपना सबसे प्रिय जीवन काल को अर्पित करना पड़ता है, अन्य वस्तुओं यथा धन, सम्मान, सन्तान, भूमि तथा घर का तो कुछ कहना ही नहीं।

श्लोक 21: आपके पिता, भाई, शुभचिन्तक तथा पुत्र सभी मर चुके हैं और दूर चले गये हैं। आपने स्वयं भी अपने जीवन का अधिकांश समय व्यतीत कर लिया है, अब आपके शरीर को बुढ़ापे ने आ दबोचा है और आप पराए घर में पड़े हुए हैं।

श्लोक 22: आप जन्म से ही अन्धे रहे हैं और हाल ही में आप कुछ बहरे हो चुके हैं। आपकी स्मृति कम हो गई है और आपकी बुद्धि विचलित हो गई है। आपके दाँत हिल चुके हैं, आपका यकृत खराब हो चुका है और आपके कफ निकल रहा है।

श्लोक 23: ओह! प्राणी में जीवित रहने की कितनी प्रबल इच्छा होती है! निश्चय ही आप एक घेरलू कुत्ते की भाँति रह रहे हैं और भीम द्वारा दिये गये जूठन को खा रहे हैं।

श्लोक 24: आपने अग्नि लगाकर तथा विष देकर जिन लोगों को मारना

चाहा, उन्हीं के दान पर आपको जीवित रहने तथा गिरा हुआ जीवन बिताने की आवश्यकता नहीं है। उनकी एक पत्नी को भी आपने अपमानित किया है और उनका राज्य तथा धन छीन लिया है।

श्लोक 25: मरने के लिए आपकी अनिच्छा होने तथा आत्म-सम्मान की बलि देकर जीवित रहने की आपकी इच्छा होने पर भी, आपका यह कृपण शरीर निश्चय ही क्षीण होगा तथा पुराने वस्त्र की भाँति नष्ट हो जाएगा।

श्लोक 26: वह धीर कहलाता है, जो किसी अज्ञात सुदूर स्थान को

चला जाए और जब यह भौतिक शरीर व्यर्थ हो जाए, तब सारे बन्धनों से मुक्त होकर अपने शरीर को त्यागता है।

श्लोक 27: अपने आप से या दूसरे के समझाने से जो व्यक्ति जाग जाता है और इस भौतिक जगत की असत्यता तथा दुखों को समझ लेता है तथा अपने हृदय के भीतर निवास करनेवाले भगवान् पर पूर्णतया आश्रित होकर घर त्याग देता है, वह निश्चय ही उत्तम कोटि का मनुष्य है।

श्लोक 28: अतएव कृपया आप अपने कुटुम्बियों को बताये बिना,

तुरन्त उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान कर दीजिए, क्योंकि शीघ्र ही ऐसा समय आनेवाला है, जिसमें मनुष्य के सद्गुणों का ह्रास होगा।

श्लोक 29: इस प्रकार आजमीढ़ के वंशज महाराज धृतराष्ट्र ने आत्मनिरीक्षणयुक्त ज्ञान (प्रज्ञा) द्वारा पूर्णत: आश्वस्त होकर तुरन्त ही अपने दृढ़ संकल्प से पारिवारिक स्नेह के सारे दृढ़ पाश तोड दिये। तत्पश्चात् वे तत्काल घर छोडक़र, अपने छोटे भाई विदुर द्वारा दिखलाये गये मुक्ति-पथ पर निकल पड़े।

श्लोक 30: कन्दहार (गान्धार) के राजा सुबल की पुत्री, परम साध्वी गान्धारी ने जब यह देखा कि उसके पति हिमालय पर्वत की ओर जा रहे हैं, जो कि संन्यासियों को वैसा ही आनन्द देता है जैसा कि युद्ध के मैदान में योद्धा को शत्रुओं के प्रहार से प्राप्त होता है, तो वह भी अपने पति के पीछे-पीछे चल पड़ीं।

श्लोक 31: अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर ने वन्दना करके, सूर्यदेव को अग्नि-यज्ञ अर्पित करके तथा ब्राह्मणों को नमस्कार करके एवं उन्हें अन्न, गाय, भूमि तथा स्वर्ण अर्पित करके,

अपने नैत्यिक प्रात:कालीन कर्म किये। तत्पश्चात् वे गुरुजनों का अभिवादन करने के लिए राजमहल में प्रविष्ट हुए। किन्तु उन्हें न तो उनके ताऊ मिले, न ही राजा सुबल की पुत्री (गांधारी) अर्थात् ताई मिलीं।

श्लोक 32: चिन्ता से पूरित महाराज युधिष्ठिर संजय की ओर मुड़े, जो वहाँ बैठे थे और उनसे पूछा : हे संजय, हमारे वृद्ध तथा अंधे ताऊ कहाँ हैं?

श्लोक 33: मेरे शुभचिन्तक चाचा विदुर तथा अपने सभी पुत्रों के निधन से अत्यन्त शोकाकुल माता गांधारी

कहाँ हैं? मेरे ताऊ धृतराष्ट्र भी अपने समस्त पुत्रों तथा पौत्रों की मृत्यु के कारण शोकार्त थे। निस्सन्देह, मैं अत्यन्त कृतघ्न हूँ। अतएव, क्या वे मेरे अपराधों को अत्यन्त गम्भीर मानकर अपनी पत्नी-सहित गंगा में कूद पड़े?

श्लोक 34: जब मेरे पिता पाण्डु की मृत्यु हो गई और हम सभी छोटे-छोटे बालक थे, तो इन दोनों चाचा-ताऊ ने हमें समस्त प्रकार की विपत्तियों से बचाया था। वे सदैव हमारे शुभचिन्तक रहे। हाय! वे यहाँ से कहाँ चले गये?

श्लोक 35: सूत गोस्वामी ने कहा : करुणा तथा मानसिक क्षोभ के कारण, संजय अपने स्वामी धृतराष्ट्र को न देखने से अत्यन्त दुखी थे, अतएव वे महाराज युधिष्ठिर को ठीक से उत्तर नहीं दे सके।

श्लोक 36: पहले उन्होंने बुद्धि द्वारा अपने मन को शान्त किया, फिर अश्रु पोंछते हुए तथा अपने स्वामी धृतराष्ट्र के चरणों का स्मरण करते हुए, वे महाराज युधिष्ठिर को उत्तर देने लगे।

श्लोक 37: संजय ने कहा : हे कुरुवंशी, मुझे आपके दोनों ताउओं

तथा गान्धारी के संकल्प का कुछ भी पता नहीं है। हे राजन्, उन महात्माओं द्वारा मैं तो ठगा गया।

श्लोक 38: जब संजय इस प्रकार बोल रहे थे, तो शक्तिसम्पन्न दैवी पुरुष श्रीनारद अपना तंबूरा लिए हुए वहाँ प्रकट हुए। महाराज युधिष्ठिर ने अपने भाइयों समेत, अपने-अपने आसन से उठकर प्रणाम करते हुए उनका विधिवत् स्वागत किया।

श्लोक 39: महाराज युधिष्ठिर ने कहा : हे देव पुरुष, मैं नहीं जानता कि मेरे दोनों चाचा कहाँ चले गये। न ही मैं अपनी उन तपस्विनी ताई को देख

रहा हूँ, जो अपने समस्त पुत्रों की क्षति के कारण शोक से व्याकुल थीं।

श्लोक 40: आप इस अपार समुद्र में जहाज के कप्तान सदृश हैं और आप ही हमें अपने गन्तव्य का मार्ग दिखा सकते हैं। इस प्रकार से सम्बोधित किये जाने पर, देव-पुरुष, भक्तों में सर्वश्रेष्ठ चिन्तक देवर्षि नारद कहने लगे।

श्लोक 41: श्रीनारद ने कहा : हे धर्मराज, आप किसी के लिए शोक मत करो, क्योंकि सारे लोग परमेश्वर के अधीन हैं। अतएव सारे जीव तथा उनके नेता (लोकपाल) अपनी रक्षा के

लिए पूजा करते हैं। वे ही सबों को पास-पास लाते हैं तथा उन्हें विलग करते हैं।

श्लोक 42: जिस प्रकार बैल एक लम्बी रस्सी से नाक से नत्थी होकर बंधन में रहता है, उसी तरह मनुष्य जाति विभिन्न वैदिक आदेशों से बँध कर परमेश्वर के आदेशों का पालन करने के लिए बद्ध है।

श्लोक 43: जिस प्रकार खिलाड़ी अपनी इच्छानुसार खिलौनों को सजाता तथा बिगाड़ता है, उसी तरह भगवान् की परम इच्छा मनुष्यों को

पास-पास लाती है और उन्हें विलग भी करती है।

श्लोक 44: हे राजन्, सभी परिस्थितियों में, चाहे आप आत्मा को नित्य मानो अथवा भौतिक देह को नश्वर, अथवा प्रत्येक वस्तु को निराकार परम सत्य में स्थित मानो या प्रत्येक वस्तु को पदार्थ तथा आत्मा का अकथनीय संयोग मानो, वियोग की भावनाएँ केवल मोहजनित स्नेह के कारण हैं, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

श्लोक 45: अतएव तुम आत्मा को न जानने के कारण उत्पन्न अपनी

चिन्ता छोड़ दो। अब आप यह सोच रहे है कि वे असहाय जीव तुम्हारे बिना किस तरह रहेंगे।

श्लोक 46: पाँच तत्त्वों से निर्मित यह स्थूल भौतिक शरीर पहले से ही सनातन काल, कर्म तथा भौतिक प्रकृति के गुणों के अधीन है। तो किस तरह से यह अन्यों की रक्षा कर सकता है, जबकि यह स्वयं सर्प के मुँह में फँसा हुआ है?

श्लोक 47: जो बिना हाथ वाले हैं, वे हाथ वालों के शिकार हैं। जो पाँवों से विहीन हैं, वे चौपायों के शिकार हैं। निर्बल सबल के भोज्य हैं

और सामान्य नियम यह है कि एक जीव दूसरे जीव का भोजन बना हुआ है।

श्लोक 48: अतएव हे राजन्, तुम्हें एकमात्र परमेश्वर को देखना चाहिए, जो अद्वितीय हैं और जो विभिन्न शक्तियों से साक्षात् प्रकट होते हैं और भीतर तथा बाहर दोनों में हैं।

श्लोक 49: वे ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण, सर्वभक्षी काल के वेश (कालरूप) में, अब संसार से द्वेषी लोगों का सर्वनाश करने के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं।

श्लोक 50: भगवान् ने देवताओं की सहायता करने का अपना कर्तव्य पहले ही पूरा कर दिया है और जो शेष है, उसके लिए वे प्रतीक्षारत हैं। आप सभी पाण्डव तब तक प्रतीक्षा कर सकते हो, जब तक भगवान् इस धरा पर उपस्थित हैं।

श्लोक 51: हे राजन्, आपके चाचा धृतराष्ट्र, उनके भाई विदुर तथा उनकी पत्नी गांधारी, हिमालय के दक्षिण की ओर गये हैं, जिधर बड़े-बड़े ऋषियों के आश्रम हैं।

श्लोक 52: यह स्थान सप्तस्रोत (सात द्वारा विभाजित) कहलाता है,

क्योंकि यहाँ पर पवित्र गंगा नदी का जल सात शाखाओं में विभाजित किया गया था। ऐसा महान् सप्तर्षियों की तुष्टि के लिए किया गया था।

श्लोक 53: इस समय सप्तस्रोत के तट पर धृतराष्ट्र नित्य तीन बार प्रात:, दोपहर तथा संध्या समय, स्नान करके, अग्निहोत्र यज्ञ सम्पन्न करके तथा केवल जल पीकर अष्टांग योग का अभ्यास करने में लगे हैं। इससे मनुष्य को मन तथा इन्द्रियों पर संयम रखने में सहायता मिलती है और वह पारिवारिक स्नेह-सम्बन्धी विचारों से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

श्लोक 54: जिसने यौगिक आसनों तथा श्वास लेने की विधि को वश में कर लिया है, वह अपनी इन्द्रियों को पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् के प्रति मोडक़र भौतिक प्रकृति के गुणों अर्थात् सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के कल्मष के प्रति निर्लिप्त बन जाता है।

श्लोक 55: धृतराष्ट्र को अपनी शुद्ध सत्ता को बुद्धि में संयोजित करके, तब परम पुरुष के साथ, जीव के रूप में, गुणों के एकात्मकता के बोध सहित, परम ब्रह्म के साथ तदाकार होना होगा। घटाकाश से मुक्त

होकर उन्हें आध्यात्मिक आकाश ऊपर तक उठना होगा।

श्लोक 56: उन्हें इन्द्रियों के सारे कार्य बाहर से भी रोक देने होंगे और भौतिक प्रकृति के गुणों से प्रभावित होनेवाली इन्द्रियों की अन्त:क्रियाओं के प्रति भी अभेद्य रहना होगा। इन सारे भौतिक कार्यों का परित्याग करने पर वे अचल हो जायेंगे और मार्ग के सारे अवरोधों को पार कर जायेंगे।

श्लोक 57: हे राजन्, सम्भव यह है कि वे आज से पाँचवें दिन अपना शरीर छोड़ देंगे और उनका शरीर राख हो जायेगा।

श्लोक 58: बाहर से अपने पति को अपनी योग शक्ति की अग्नि में अपनी कुटिया समेत जलता हुआ देखकर उसकी साध्वी पत्नी एकाग्रता पूर्वक ध्यानमग्न होकर अग्नि में प्रवेश करेगी।

श्लोक 59: तब हर्ष तथा शोक से अभिभूत होकर, विदुर उस पवित्र तीर्थ-स्थान से चले जाएँगे।

श्लोक 60: ऐसा कहकर महर्षि नारद, अपनी वीणा-समेत बाह्य आकाश में चले गये। युधिष्ठिर ने उनके उपदेश को अपने हृदय में धारण

किया, जिससे वे सारे शोकों से मुक्त हो गये।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव